मंदिरों का इतिहास

मंदिरों का सामान्य इतिहास व विवरण

मंदिर-

मन्दिर भारतीय परंपरा अनुसार उपासना स्थल व देवालय हैं। हर धर्म में उपासना स्थल होते हैं, पर वे देवालय भी हों, यह आवश्यक नहीं है। देवालय होने के लिए ईश्वर के सगुण साकार रूप में होने या मूर्त माध्यमों में अभिव्यक्त हो सकने में विश्वास आवश्यक है।

यद्यपि मंदिर शब्द हिंदू उपासना स्थल व देवालयों के लिए सर्वाधिक लोकप्रिय है, परंतु अन्य धर्मों-संप्रदायों में भी यह विद्यमान है, जिनमें बौद्ध और जैन सर्वाधिक प्रमुख हैं।

इतिहास-

मन्दिर शब्द संस्कृत वाङ्मय में अधिक प्राचीन नहीं है। महाकाव्य और सूत्रग्रन्थों में मंदिर की अपेक्षा देवालय, देवायतन, देवकुल, देवगृह, देवस्थान आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। मंदिर का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। अधिकांश प्रारंभिक ग्रंथों में मंदिर शब्द का निवास के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

वस्तुत: वैदिक युग में प्रकृति देवों की उपासना प्रमुख थी, जिसमें पूजन से अधिक यजन का विधान था। इसमें बल मूर्तिपूजा पर नहीं, यज्ञ पर था, इसलिए परंपरागत रूप से देवालय के रूप में मंदिर बनने के स्पष्ट साक्ष्य नहीं मिलते।

कालांतर में महाकाव्य व पौराणिक युग में वैदिक देवता क्रमशः मूर्त होते गए और उनके साथ देवालय के रूप में मंदिर बनने प्रारंभ हो गए. फिर तो उनकी अगणित शृंखला बनती गई, जो रूप बदलते हुए आज तक अनवरत विद्यमान है।

शब्द व भाषीय व्युत्पत्ति-

मंदिर शब्द संस्कृत का है, जो मूलतः मंद (मन्द् धातु+किरच् प्रत्यय) शब्द से बना माना जाता है। यह शब्द शिथिलन व विश्रांति का वाचक होने से मूलतः गृह के लिए प्रयुक्त होता था, जो कालांतर में अर्थांतरित होकर देवगृह के लिए रूढ हो गया। अनेक विचारक इसकी व्युत्पत्ति मन शब्द से निकालते हैं, जिसका आशय आध्यात्मिक मनन बताते हैं। पर यह बहुत व्याकरण सम्मत नहीं।

मंदिर के पर्याय के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी का टेम्पल (Temple) शब्द मूलतः लैटिन भाषा के टेम्पलम (Templum) शब्द से बना है। वहाँ प्राचीन यूनानी धर्म के देवालय रूपी उपासनास्थलों में मूर्तिपूजा का विधान था, जिन्हें टेम्पल कहा जाता था। कालांतर में वह परंपरा क्रमशः अब्राहमी धर्मों के प्रभाव के साथ विलुप्तप्राय हो गई।

अन्य भाषाओं में मंदिर के लिए अलग-अलग शब्द मिल जाते हैं। सामान्यत: तमिल भाषा में मन्दिर के लिए 'कोविल', कन्नड़ में 'देवस्थान' व 'गुडी', तेलुगू में 'आलयम्' , मलयालम में 'क्षेत्रम्' शब्दों का प्रयोग होता है। अरबी-फारसी में 'माबद' शब्द है. चीनी में 'सिमिआओ' शब्द मंदिर का वाचक है। सिंहली में 'पांसल' शब्द का प्रयोग होता है। ऐसे ही हर भाषा में अलग शब्द मिल जाते हैं.

मन्दिर का स्थापत्य-

हर संस्कृति की अपनी भौतिक संरचना भी होती है, जब पूजागृह के निर्माण का बिंदु हो, तो संस्कृति उसके कुछ विधान भी सुनिश्चित करती है, जो उसके वास्तु-शिल्प में परिलक्षित होती है। इस वास्तु-शिल्प में कुछ शास्त्रीय विधान होते हैं, जो कुछ दार्शनिक व्याख्या लिए हो सकते हैं, तो कुछ लोकसंस्कृति के रंग भी, जो वहाँ की परंपरा से प्राप्त हुए हों। इस प्रकार मंदिरों की संरचना अनुसार उनकी शैलियों को वर्गीकृत व परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। सामान्यतः प्रत्येक मंदिर

में दो तरह की कक्षीय संरचना होती है-

गर्भगृह तथा मंडप, गर्भगृह में मुख्य देवता की मूर्ति स्थापित होती है। मन्दिर के गर्भगृह के चारों ओर परिक्रमा के लिये स्थान होता है। यह परिक्रमा पथ पूजन विधान के अतिरिक्त दर्शन हेतु आए श्रद्धालुओं को पंक्तिबद्ध या व्यवस्थित रूप में गमनागमन भी सुनिश्चित करता है।

गर्भगृह के ऊपर शिखर होता है, जो मंदिर की शैलियों के वर्गीकरण का प्रमुख निर्धारक है। शिखर व अधिष्ठान दोनों प्रायः जटिल ज्यामितीय संरचना के साथ बनाए जाते हैं। विशेषत: नागर शैली के मंदिरों में शिखर में उपशिखर जुड़ते चले जाते हैं, जो अनंतता के प्रतीक माने जाते हैं। कई बार कलश के ऊपर ध्वज भी लगाए जाते हैं.

ऐसे ही एक मुख्य मंडप के अतिरिक्त लघु व अर्द्धमण्डप भी हो सकते हैं, जो दर्शन के अतिरिक्त कीर्तन, नर्तन आदि के लिए भी प्रयुक्त होते रहे हैं। सामान्यतः प्रथम मंडप सभामंडप (दर्शन हेतु) व द्वितीय मंडप रंगमंडप (कीर्तन, नर्तन हेतु) के रूप में प्रयुक्त होता था।

मंदिर निर्माण में मुख्यत: पत्थर का प्रयोग होता रहा है, किंतु ईंटों के भी प्रचुर प्रयोग मिल जाते हैं। मौर्य काल में काष्ठ मंदिरों के भी साक्ष्य हैं। विशेषतया पहाड़ी क्षेत्र में काष्ठ मंडपों की अत्यधिक युति देखने को मिलती है। नेपाल के काठमांडू का नामकरण ही काष्ठ मंडप शब्द से हुआ है, जिसमें लकडी के साथ ईंटों का मंजुल समन्वय है।

शैलियाँ-

भारतीय स्थापत्य कला व शिल्पशास्त्रों के अनुसार मंदिरों विशेषत: हिंदू मंदिरों की तीन मुख्य शैलियाँ हैं -

1. **नागर शैली :** मुख्यत: उत्तर भारतीय शैली
2. **द्रविड़ शैली :** मुख्यत: दक्षिण भारतीय शैली
3. **वेसर शैली :** नागर-द्रविड़ मिश्रित मुख्यत: दक्षिण-पश्चिमी भारतीय शैली

पर यह वर्गीकरण भी बहुत स्थूल है। समय व संस्कृति भेद के साथ इनमें भी अनेक भेद व मिश्रण हैं। इनके अतिरिक्त हिमालय में हिमाचल, उत्तराखंड में अपनी पहाड़ी शैली प्रमुख है, तो पूर्वोत्तर में बहुत अलग पूर्वोत्तरीय शैली. इसी प्रकार राजस्थान में अनेक मध्यकालीन मंदिरों में राजपूताना शैली का प्राचुर्य या मिश्रण है, तो आधुनिक काल में ग्रीक-रोमन या यूरोपीय शैली का भी मिश्रण मिल जाता है।

1. **नागर शैली-**

   'नागर' शब्द नगर से बना है। सर्वप्रथम नगर में निर्माण होने के कारण इन्हे नागर की संज्ञा प्रदान की गई। नागर शैली की बहुलता मुख्यतः उत्तर व मध्य भारतीय परिक्षेत्र में है। नागर शैली का प्रसार हिमालय से लेकर विंध्य पर्वत माला तक विशेषत: नर्मदा नदी के उत्तरी क्षेत्र तक देखा जा सकता है। यह कहीं-कहीं अपनी सीमाओं से आगे भी विस्तारित हो गयी है।

   वास्तुशास्त्र के अनुसार नागर शैली के मंदिरों की पहचान आधार से लेकर सर्वोच्च अंश तक इसका चतुष्कोण होना है। विकसित नागर मंदिरों में गर्भगृह, उसके समक्ष क्रमशः अन्तराल, मण्डप तथा अर्द्धमण्डप प्राप्त होते हैं। एक ही अक्ष पर एक दूसरे से संलग्न इन भागों का निर्माण किया जाता है।

   नागर वास्तुकला में वर्गाकार योजना के आरंभ होते ही दोनों कोनों पर कुछ उभरा हुआ भाग प्रकट हो जाता है जिसे 'अस्त' कहते हैं। इसमें मूर्ति के गर्भगृह के ऊपर पर्वत-शृंग जैसे शिखर की प्रधानता पाई जाती है। कहीं चौड़ी समतल छत के ऊपर उठती हुई शिखा सी भी दिख सकती है। माना जाता है कि यह शिखर कला उत्तर भारत में सातवीं शताब्दी के पश्चात् अधिक विकसित हुई. कई मंदिरों में शिखर के स्वरूप में ही गर्भगृह तक को समाहित कर

लिया गया है।

प्रमुख शिल्पशास्त्रों के अनुसार नागर शैली के मंदिरों के आठ प्रमुख अंग है -

1. **अधिष्ठान** - मूल आधार, जिस पर सम्पूर्ण भवन खड़ा किया जाता है।
2. **शिखर** - मंदिर का शीर्ष भाग अथवा गर्भगृह का उपरी भाग
3. **कलश** - शिखर का शीर्षभाग, जो कलश ही या कलशवत् होता है।
4. **आमलक** - शिखर के शीर्ष पर कलश के नीचे का वर्तुलाकार भाग
5. **ग्रीवा** - शिखर का ऊपरी ढलवाँ भाग
6. **कपोत** - किसी द्वार, खिड़की, दीवार या स्तंभ का ऊपरी छत से जुड़ा भाग, कोर्निस
7. **मसूरक** - नींव और दीवारों के बीच का भाग
8. **जंघा** - दीवारें (विशेषकर गर्भगृह की दीवारें)

परंतु ये आठ भी पूर्ण या पर्याप्त नहीं हैं. अधिष्ठान का ऊपरी प्लेटफार्म जगती कहलाता है। मूल मंदिर के शिखर के उपरांत एक अंतराल देकर स्तूपवत् मंडप भी बनते हैं। ये भी क्रमश: घटती ऊँचाई व विस्तार के साथ महामंडप, मंडप, अर्धमंडप कहलाते हैं। द्वार व स्तंभ बहुधा सर्पाकृति आरोह अवरोह लिए बनने लगे, तोरण द्वार के रूप में. शिखर में जुड़ने वाले उपशिखर उरुशृंग कहे जाते हैं। शिखर को विमान भी कहा जाता है। मंदिर के विभिन्न स्थानों पर गवाक्ष भी दिख सकते हैं।

2. **द्रविड़ शैली-**

यह शैली दक्षिण भारत में विकसित होने के कारण द्रविड़ शैली कहलाती है। तमिलनाडु के अधिकांश मंदिर इसी श्रेणी के हैं। इसमें मंदिर का आधार भाग वर्गाकार होता है तथा गर्भगृह के ऊपर का शिखर भाग प्रिज्मवत् या पिरामिडनुमा होता है, जिसमें क्षैतिज विभाजन लिए अनेक मंजिलें होती हैं। शिखर के शीर्ष भाग पर आमलक व कलश की जगह स्तूपिका होते हैं। इस शैली के मंदिरों की प्रमुख विशेषता यह है कि ये काफी ऊँचे तथा विशाल प्रांगण से घिरे होते हैं। प्रांगण में छोटे-बड़े अनेक मंदिर, कक्ष तथा जलकुण्ड होते हैं। परिसर में कल्याणी या पुष्करिणी के रूप में जलाशय होता है। प्रागंण का मुख्य प्रवेश द्वार 'गोपुरम्' कहलाता है। प्रायः मंदिर प्रांगण में विशाल दीप स्तंभ व ध्वज स्तंभ का भी विधान होता है.

3. **वेसर शैली-**

नागर और द्रविड़ शैली के मिश्रित रूप को वेसर शैली की संज्ञा दी गई है। वेसर शब्द कन्नड़ भाषा के 'वेशर' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है- रूप. नवीन प्रकार की रूप-आकृति होने के कारण इसे वेशर शैली कहा गया, जो भाषांतर होने पर वेसर या बेसर बन गया.
यह विन्यास में द्रविड़ शैली का तथा रूप में नागर जैसा होता है। इस शैली के मंदिरों की संख्या सबसे कम है. इस

शैली के मंदिर विन्ध्य पर्वतमाला से कृष्णा नदी के बीच निर्मित हैं। कर्नाटक व महाराष्ट्र इन मंदिरों के केंद्र माने जाते हैं। विशेषत: राष्ट्रकूट, होयसल व चालुक्य वंशीय कतिपय मंदिर इसी शैली में हैं।

उक्त शैलियों के सामान्य अंतर को हम इस **तालिका व चित्र** में भी देख सकते हैं।

4. मंदिरों की नागर व द्रविड शैलियों में सामान्य अन्तर

क्र.सं.	नागर शैली	द्रविड़ शैली
1	वर्गाकार आधार पर निर्मित	आयताकार आधार पर निर्मित
2	शिखर की संरचना पर्वतश्रृंग के समान	शिखर की संरचना प्रिज्म या पिरामिड के समान
3	शिखर के साथ उपशिखर की ऊर्ध्व-रैखिक परम्परा	शिखर का क्षैतिज विभाजन और शिखर पर भी मूर्तियों की परम्परा
4	शिखर के शीर्ष भाग पर ऊर्ध्व-रैखिक आमलक एवं उसके ऊपर कलश	शिखर के शीर्ष भाग पर कलश की जगह बेलनाकार व एक ओर से अर्धचंद्राकार संरचना एवं उसके ऊपर अनेक कलशवत् स्तूपिकाएं
5	शिखर सामान्यतः एक-मंजिले	शिखर सामान्यतः बहु-मंजिले
6	गर्भगृह के सामने मण्डप व अर्द्धमण्डप	गर्भगृह के सामने मण्डप आवश्यक नहीं, प्रायः शिखरविहीन मंडप, चावड़ी या चौलत्री के रूप में स्तंभ युक्त महाकक्ष
7	द्वार के रूप में सामान्यतः तोरण द्वार	द्वार के रूप में सामान्यतः विशाल गोपुरम्
8	मंदिर का सामान्य परिसर	मंदिर का विशाल प्रांगण
9	परिसर में जलाशय आवश्यक नहीं	परिसर में कल्याणी या पुष्करिणी के रूप में जलाशय
10	मंदिर प्रांगण में पृथक दीप स्तंभ व ध्वज स्तंभ का भी विधान नहीं	प्रायः मंदिर प्रांगण में विशाल दीप स्तंभ व ध्वज स्तंभ का भी विधान
11	सामान्यतः द्रविड़ शैली की तुलना में कम ऊँचाई	सामान्यतः नागर शैली की तुलना में अधिक ऊँचाई

मंदिर की तीन शैलियों का पार्श्व दृश्य

नागर शैली

द्रविड शैली

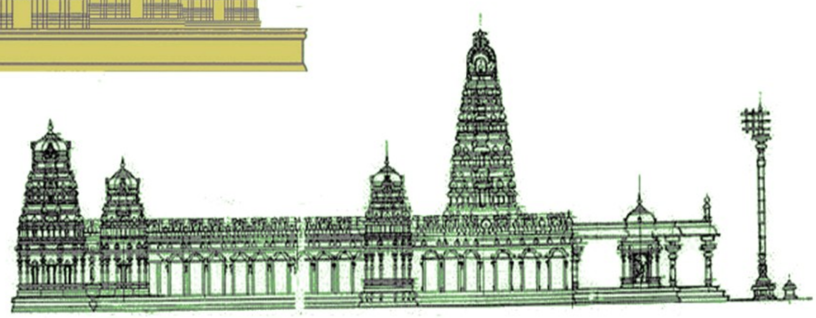

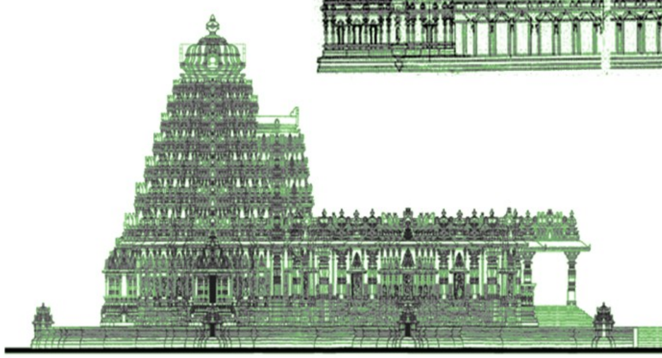

वेसर शैली

नागर शैली

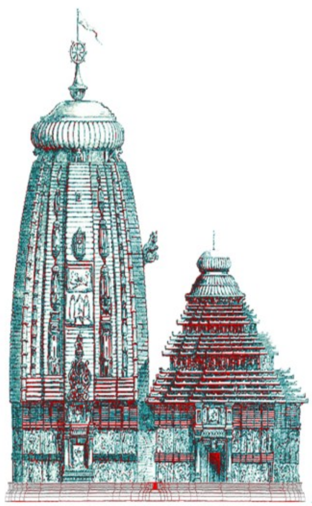

वेसर शैली

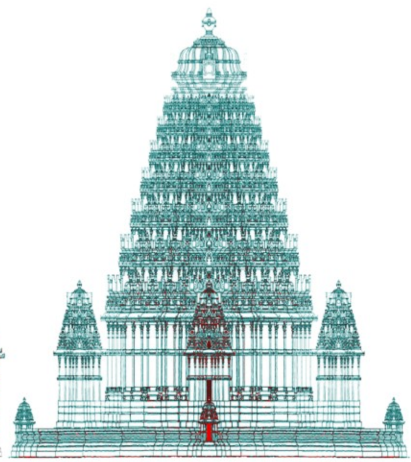

द्रविड शैली

विकास-

मंदिर भारतीय धर्म व संस्कृति में धर्म के लौकिकीकरण व उपासना पद्धति के सरलीकरण के प्रमुख सूत्रधार भी माने जाते हैं, क्योंकि इन्होंने न केवल यज्ञ की क्रमशः जटिल होती परंपरा के समक्ष एक सरल विकल्प प्रस्तुत किया, अपितु जनसामान्य के धर्म तक पहुँचने व धर्म का सार्वजनीकरण करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

माना जाता है कि ऋग्वेद में जो प्रार्थनापरकता थी और यजुर्वेद में जो कर्मकांडपरकता प्रमुख थी, उसके समानांतर तत्समय ही सामवेद की भक्तिपरक सामगायन की हजारों शाखाएँ थीं। (सहस्रवर्त्मा सामवेद:) संभव है, उनमें अनेक भक्तिपरक होते हुए तत्समय भी देवालयों से जुड़े हों।

वर्तमान देवालयरूपी जिन हिंदू मंदिरों को देखते हैं, उनके विकास में वैदिक परम्परा के क्रमिक परिवर्तन के साथ बौद्ध एवं जैन धर्म के मंदिरों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें उनकी गुहा, स्तूप एवं चैत्यों की भी भूमिका रही है। सैंधव या सारस्वत सभ्यता में भी कुछ उपासना-स्थलवत् संरचनाएं मिली हैं, किंतु उनके विषय में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

प्रारंभ में जिन मंदिरों के अवशेष मिलते हैं, वे सरल संरचना के समतल छत वाले दिखते हैं। समय के साथ मूर्तिपूजा की लोकप्रियता के साथ मंदिर स्थापत्य का विकास होता गया. संभवतः मंदिर निर्माण कला मौर्यकाल में ही प्रारम्भ हो गई थी।

पर उनके अत्यल्प अवशेष हैं। विशेषतया कुषाणकाल के बाद गुप्त काल तक आते-आते देवताओं की पूजा के लिए बड़े पैमाने पर देवालयों का निर्माण होने लगा, जिनके बाद तमाम राजवंशों ने मंदिरों की विपुल शृंखला तैयार कर दी।

यह भी माना जाता है कि मंदिरों की वर्तमान संरचना का आरंभ मुख्यतः शैव या शाक्त परंपरा से अधिक वैष्णव परंपरा से हुआ। प्रारंभिक शैव व शाक्त देवालय बहुधा मुक्तांगन में होते थे, कई बार किसी वृक्ष के नीचे, कभी ग्राम नगर की सीमा पर, तो कभी उसकी चौपाल पर. देवी मंदिर प्रायः सीमा पर रक्षिका के रूप में होते, तो शिव मंदिर सार्वजनिक मिलन की जगहों पर. समय के साथ नगरों से दूर वनों, पर्वतों, सागरों, नदियों के निकट तीर्थ बने, तो वहाँ भी मंदिर बने।

अनेक मंदिरों के निर्माण में राजाओं की प्रमुख भूमिका रही है। विशेषत: अधिकांश विशाल व भव्य मंदिरों का निर्माण राजवंशों द्वारा ही किया गया है। समय के साथ कई मंदिरों का पीढ़ियों तक निर्माण चलता रहा है या फिर पुनर्निर्माण होता रहा है। स्वयं देवस्थान विभाग द्वारा अनेक मंदिरों का जीर्णोद्धार करते हुए पुनर्निर्माण कराते हुए उन्हें अत्यंत सुंदर व सुदृढ़ रूप दिया गया है।

मंदिरों में मूर्तियाँ-

मंदिर का होना मूर्ति का होना भी है. मूर्तियां दो रूप में बनती थीं- छवि रूप में और प्रतीकात्मक रूप में।

शिव की अधिकांश मूर्तियां प्रतीकात्मक रूप में हैं, लिंग के रूप में, विष्णु की की अधिकांश मूर्तियां छवि रूप में हैं, देवी की मूर्तियां दोनों रूपों में मिल जाती हैं।

मूर्ति सामान्यतः पाषाण या धातु की बनी होती है। मिट्टी की बनी प्रतिमाएं भी पूजी जाती हैं,
किंतु पूजनोपरांत उनका प्रायः विसर्जन किया जाता है। अपवादरूप ओडिशा के पुरी में काष्ठ की प्रतिमा भी देखने को मिल सकती है।

मूर्तिपूजा में सामान्यतः मूर्ति का पूर्ण होना आवश्यक है अर्थात् आधी या खंडित मूर्ति की पूजा नहीं होती. किंतु इसके भी अपवाद कहीं-कहीं मिल सकते हैं. ओडिशा के पुरी की मूर्ति अपूर्ण है. राजस्थान में सालासर में हनुमान की प्रतिमा आवक्ष तक ही है. ऐसे कतिपय अन्य दृष्टांत भी मिल सकते हैं।

कहीं-कहीं मूर्तियां मानव निर्मित न होकर प्राकृतिक भी हैं, जो देवता की छवि या प्रतीक से मेल खाती हैं। अमरनाथ में तो प्राकृतिक रूप से बनने वाले हिम शिवलिंग की पूजा की जाती है।

मंदिर ध्यान-साधना से अधिक दर्शन-पूजन के लिए बने थे और इसमें अनेक मंदिरों में दर्शन के लिए समय अवधि भी निर्धारित है. चूँकि देवता को मानवीय रूप में ईश्वरीय विग्रह माना जाता है, अत: उनके भोजन, शयन, जागरण आदि की भी व्यवस्था की जाती है।

पूजन एवं भोग-प्रसाद का विधान-

मंदिर में दर्शन के साथ-साथ पूजन एवं भोग प्रसाद का भी विधान होता है. देव पूजन के विधान मुख्यतः वे विधान हैं, जो किसी के स्वागत सम्मान के लिए परंपरागत रूप में किए जाते रहे हैं. देवपूजन के कर्मकांड का अधिकांश अतिथि सत्कार की तरह होता है। जैसे- आमंत्रण के लिए आवाहन करना, आसान देना, पाद- प्रक्षालन करना, आचमन कराना, स्नान कराना, वस्त्र देना, शृंगार करना, धूपदान व दीपदान कर सुगंधित व दीप्त वातावरण बनाना, भोग के रूप में उन्हें भोज्य पदार्थ अर्पित करना और उसमें से प्रसाद पाना. देव के लिए अर्पित सामग्री को सम्मिलित व संक्षिप्त में भोग-राग कह सकते हैं।

विचारक मानते रहे हैं कि देवता अर्पित किए जाने वाले भोग के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि मानव विकास के किस कालखंड में किस प्रकार के देवता की प्रधानता रही. उनके अनुसार युगों से युगधर्म जन्मते हैं और युगधर्म से उनके देवत्व- कभी शिवत्व, कभी शक्तिमत्ता, कभी विष्णुमय, तो कभी ब्रह्मविद् .

धर्मदार्शनिक मानते हैं कि जब आहारसंग्राहक युग था, तब शिव मुख्य आराध्य बने. इसी कारण शिव की पूजा में

मुख्यतः अकृष्य भोग हैं- मंदार पुष्प, धतूरा, भाँग, दूध.
जब आखेटक युग हुआ, तब काली मुख्य आराध्य बनीं. इसी कारण उनकी सेवा पूजा में कहीं बलि है, सुरा है, तंत्र है. राजतंत्रों के अभेद्य दुर्गों की दुर्गा वही बनी रहीं.
जब कृषि व पशुपालन का युग आया, तो विष्णु मुख्य आराध्य बने, गोपालक कृष्ण बनकर. हल मूसल युक्त बलराम हैं. इसी प्रकार विकासवाद के संकेत की तरह अवतारवाद है. राजतंत्रों के युग ने ईश्वर को राजा की तरह चित्रित करना शुरू कर दिया. देवतंत्र में पूर्वापर की यह दार्शनिक-ऐतिहासिक मान्यता श्रद्धालु के लिए महत्वपूर्ण नहीं, क्योंकि वह जिस देवता की उपासना करता है, प्रायः उसे ही प्रथम व परम मान लेता है।

मंदिरों संबंधी जानकारी के स्रोत-

मंदिरों संबंधी जानकारी के स्रोत वही होते हैं, जो इतिहास ज्ञान के होते हैं। परंतु मंदिरों के संबंध में मिथक, आस्थाएँ, किंवदंतियाँ, जनश्रुतियाँ भी पर्याप्त प्रभावशाली हो जाती हैं। सामान्यत: अभिलेखों के रूप में शिलालेखों व ग्रंथों के अतिरिक्त दानपत्रों, ताम्रपत्रों, बहियों, रोजनामचों व शासकीय पट्टों या राजाज्ञाओं से तो जानकारी मिलती ही है, राजस्थान में कहीं वातों, ख्यातों, वंशावलियों व वचनिकाओं में भी पर्याप्त जानकारी मिल जाती है।

राजस्थान के मंदिरों की शैली-

राजस्थान में लगभग प्रत्येक शैली के मंदिर मिल जाते हैं। उनमें अनेक राजपूताना की अपनी शैली में भी निर्मित हैं। बाहुल्य नागर व नागरपरक राजपूताना शैली के मंदिरों का है. अनेक मंदिर पुरातात्विक महत्व के हैं, जो भारतीय पुरातत्व विभाग या राज्य पुरातत्व विभाग के अंतर्गत अधिसूचित हैं। यहाँ जयपुर के विराटनगर (वैराठ) में बीजक की पहाड़ियों में मौर्यकालीन मंदिर के अवशेष भी मिले हैं, जो भारत के सर्वाधिक प्राचीन मंदिरों के अवशेषों में परिगणित है. दौसा जिले के बरनाला गाँव में प्राप्त शिलालेख अनुसार वहाँ तीसरी सदी के मंदिर होने के भी तर्क हैं।

अनेक मंदिरों में शैली का ऐसा व्यामिश्रण है कि उन्हें किसी शास्त्रीय वर्गीकरण में समाहित करना कठिन है। उदाहरणार्थ डूँगरपुर का देवसोमनाथ मंदिर नागर शैली का होकर भी द्रविड़ शैली की तरह बहुमंजिला है. रणकपुर मंदिर में शिखरों की बहुलित शृंखला है. ऐसे ही अनेक मंदिर गोल गुंबदाकार हैं, जिनपर मुगल व यूरोपीय शैली की छाप है। अपनी सुंदर आंतरिक नक्काशी के लिए प्रसिद्ध माउंट आबू के देलवाड़ा जैन मंदिर का मुख्य मंदिर विमल वसाहि शिखर से इतना साधारण है कि उसे किसी शैली में रखना कठिन है, जबकि इसी के प्रारंभ में खरतरगच्छ मंदिर का शिखर बहुत कुछ वेसर शैली सा दिखता है। ऐसी विविधता अन्यत्र भी बहुत है।

राजस्थान में मंदिरों की संख्या-

राजस्थान में मंदिरों की संख्या लाखों में है, जिसकी सर्वथा सुनिश्चित गणना कठिन है। अकेले देवस्थान विभाग के पर्यवेक्षण में कुल 5 श्रेणियों के लगभग 60 हजार मंदिर हैं. इनमें प्रन्यासों द्वारा संचालित मंदिरों, ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान अपंजीकृत मंदिरों व निजी व्यक्तियों या संप्रदायों द्वारा निर्मित आधुनिक मंदिरों में से अधिकांश मंदिरों की संख्या सम्मिलित नहीं है, जो कुल लाखों में हो सकती है।

राजस्थान के मंदिरों की संपदा-

राजस्थान के विभागीय मंदिरों की संपदा कुल 6 राज्यों तक फैली है। इनके अंतर्गत विपुल चल-अचल संपत्ति विद्यमान है। कुल आवासीय व व्यावसायिक भवनों की संख्या 2 हजार से अधिक है। इनके साथ कुल 16 विश्राम गृह व धर्मशालाएँ भी हैं। इनके अतिरिक्त हजारों बीघे कृषि भूमि भी उपलब्ध है।

राजस्थान के मंदिरों का महत्व-

राजस्थान के मंदिरों का महत्व धार्मिक-आध्यात्मिक प्रतिष्ठानों के अतिरिक्त सांस्कृतिक विरासतों व पुरातात्विक धरोहरों के रूप में मुखर रही है. अपनी दिव्यता एवं भव्यता के कारण यह तीर्थ यात्रियों एवं पर्यटकों के आकर्षण के प्रमुख केंद्र रहे हैं और ऐसे अनेक मंदिर है जहां प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में श्रद्धालु आते हैं और दर्शन कर स्वयं को अभिभूत पाते हैं। देवस्थान विभाग देवस्थान के अधीन मंदिरों में विभिन्न पर्वों व अवसरों पर धार्मिक आयोजन भी करता है।

देवस्थान विभाग देवस्थान राजस्थान में आपका स्वागत करता है।